अध्याय-षष्ठम

महामना जी एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा
अध्याय-षष्ठम
महामाना जी एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा

पं 0 मदन पोहन मालवीय जी के जीवन काल में देश के समस्त अनेक जटिल एवं चुनौतीपूर्ण परिस्थितियाँ तथा देश के नवनिर्माण के लिए अनेक महान लक्ष्य थे। सैकड़ों वर्षों से अनेक प्रतिकूल परिस्थितियाँ के दबाव को झेलते-झेलते यह देश प्रायः दूर चुका था, उसके शक्तिकण बिखर गये थे। इसके बावजूद भारतीयों में साहस, शक्ति एवं आत्मविश्वास की कमी नहीं थी, आवश्यकता थी, तो मात्र उसे संयोजित करके योजनाबद्ध ठंग से विकास कार्य में लगाने की।

मालवीय जी के समस्त एक तरफ भारत का ऊजवल अर्थ था, तो दूसरी ओर लुटा हुआ वर्तमान। हिंदू समाज, जो कई सो वर्षों से निरंतर उत्पीड़ित एवं शोषित रहा, उसकी दशा और भी जर्रत हो चुकी थी। मालवीय जी ने हिंदू समाज की इस सोचनीय दशा पर गम्मीरता से विचार किया। उनके प्रारूप से ज्ञात होता है कि उस समय पूरे भारत में हिंदुओं और मुसलमानों की संख्या 5/6 तथा 1/6 अनुपात में थी। प्रत्येक हिंदू की प्रतिदिन की ओसत आय एक आना थी, जो इंग्लैंड के प्रति ब्यक्ति प्रतिदिन की ओसत आय का 1/20 वाँ हिस्सा थी। इसके 50 वर्ष पूर्व प्रत्येक हिंदू की ओसत आय दो आना थी। पूरे देश में 94 प्रतिशत हिंदू अशिक्षित थे तथा संगुण क्रान्त में 97 प्रतिशत हिंदू अशिक्षित थे। उस समय ब्रेट बिट्रेन और जर्मनी में मात्र क्रमशः 4.7 तथा 0.11 प्रतिशत लोग ही अशिक्षित थे। पूरे देश में हिंदू समाज का एक बड़ा भाग किसान-मजदूरों का था, जिनका स्पष्ट दीखता अनावृत्त कंकाल, धर्मी हुई आँखें, निर्विभाज शरीर, मैला कुचेला घर, किसी भी आँकड़े को छुटाने वाले प्रत्यक्ष अभिमूलक थे। हर दस वर्ष में लाखों नागरिक अकाल के गाल में चले जाते, प्रतिवर्ष हजारों की
संख्या में प्रेरणा का शिकार हो जाते थे। प्राकृतिक संसाधन की प्रचुरता थी, किन्तु जीविका का निराल्म अभाव। प्रतियोगिता की कठी मार और निराशा की स्थिति थी। कास्तकार जो भारत के मेलुदण्ड है; अधिकांश प्रान्तों में अल्पाहार पर गुजर-बस्तर करते भयंकर रूप से ऋण-प्रस्तुत थे। विस्वासिया-दलिलों ने सुखी-सम्पन्न समाज को उजाड़ सा दिया था। मुकदमों में फंसा कर उन्हें दरिद्र बना दिया गया था। सरकारी कर्मचारियों की विषयाशिष्टता ने उन्हें दूषित बना दिया था।

मालवीय जी के अनुसार — यह स्थिति उस देश की थी जिसके पास अपार प्राकृतिक संपदा है, जिसकी भूमि विश्व के किसी भी हिस्से से अधिक उपजाऊ है, जिसमें सहौताम किस्म के अन्य, फल उगाते हैं; जलावन और इमारती लकड़ियों के लिए विशाल घना जंगल है; कीमती अयस्क और खनिज देने वाले समृद्ध खान है; जिसके किसान काफी परिश्रमी, सामय तथा मितव्यादि है; शिल्पकार प्रवाण तथा बुद्धिमान है; श्रमिक धर्मरत्नी तथा कठोर परिश्रमी है, जिसके समाज का एक बड़ा हिस्सा काफी बुद्धिमान है, और जिसे प्रशिक्षित कर दुनिया के किसी भी सम्बंध एवं सुसंस्कृत देश के समक्ष खड़ा किया जा सकता है। इस देश के इतिहास ने अनेक महान लोगों को पैदा किया है, इसकी सम्पन्नता-संस्कृत विश्व में ऊँची रही है। किन्तु आज, उच्च एवं अनेक भावना पर संगठित हिंदू समाज एक विश्रृंखलित भीड़ मात्र बनकर रह गया है।

पं॰ मदन मोहन मालवीय जी ने देश की दशा पर सर मिलफोर्ड मोलेसवर्थ के उस कथन को उद्धृत किया है, जिसे बनारस में सन् 1905 में प्रथम औपचारिक सम्मेलन में उसने एक पत्रिपत्र के द्वारा प्रस्तुत किया था कि “भारत स्वर्ग में एक विचित्र चम्पा है, जिसमें यहूदी की स्थिति साफ-साफ देखी जा सकती है। यह पहले सम्पन्न, समृद्ध तथा एक तरह से काफी सम्बंध देश रहा; किन्तु अब उसके देशी उद्योग हासोमुख
है; आधुनिक सम्यता तथा विकास के दबाव में पूरी तरह कुचल दिये गये हैं। यहाँ की 30 करोड़ आबादी का 60 प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर है। इसका एक बड़ा भाग अन्य तरह के ओदोगिक उद्देश्यों पर आश्रित है। किन्तु कला और दस्तकारी, जिसमें भारत बहुत हाल तक समुन्नत रहा, चाहे धातु-कर्म हो या वस्त्रोद्योग चाहे कर्तिका, काशभाण्ड, मृदभाण्ड, रेशम, कालीन या अन्य तरह के उद्योग हो; सबके सब या तो नष्ट हो गये अथवा मृत्यु के कगार पर हैं।

इसी विषय में कलकत्ता रिस्कू में सन् 1905 से 20 वर्ष पूर्व छे अपने एक लेख में बताया है — "भारत गुलचीन (Pagoda) वृक्षों की धरती; भारत—दौलत की खान; भारत मार्कापोलो तथा अन्य पूर्ववर्ती यात्रियों की श्रद्धास्थली; किन्तु हाय! वही भारत आज निर्धारिता के दल—दल में! सोने के ढेर के बीच मूखा 'मिस्डास' (एक यूरोपियन चित्रित जिसे बनाना था कि जिस चीज को हुए वह सोना हो जाय) किर अधिक विरोधाभास में जीने का साहस नहीं दिखा सकता। यही स्थिति भारत के साथ है जो मिस्डास की तरह अविल दौलत के बीच मूखा है।"

भारत के इतने बड़े कारोबार तथा उद्योगों के नष्ट होने का कारण क्या थे? कहने की आवश्यकता नहीं कि मुख्य रूप से 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने भारत पर अपना कब्जा जमा लिया। किन्तु इससे भी अधिक दु:ख की बात यह है कि आजादी के 60-65 वर्ष बाद भी हमारी सरकार अपने इस विनष्ट समृद्धिशाली एवं समुन्नत परम्परा को पुनर्जीवित करने का कोष कहे, स्वयं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के चंगूल में बुरी तरह फॉस गयी है और हालात यह है कि देश का एक बड़ा भाग, जो व्यवसाय तथा कला के सहारे दुनिया में अपने जल्दे का पताका फहराया था, वह आज भी ब्रिटिश-काल की अपनी दशक में वर्तमान है। गाँव का गाँव आज भी मंत्रकर गर्मी के दलदल में फौसा है; देश का
क्या माल आज भी निर्यात किया जा रहा है। छोटे-छोटे उद्योगों को बढ़ावा न देकर बड़े कल-कारखानों पर बल दिया गया जिसको लगाने में देश को गिरवी रख देना पड़ा।
अपनी क्षमता पर मरोसा न कर विश्व के प्रतियोगिता पूर्ण दौड़ में आगे आने के लिए विकासित देशों की नकल करने में ही हमारा सरासर समय निकल गया, फलस्वरूप चेहरे पर छालावपूर्ण मुक्तान मुन्तान तो बिखर गयी किन्तु राष्ट्र की आत्माओं-किसानों, मजदूरों एवं अन्य श्रमिकों का पेट भूखा का भूखा ही रहा।
अमेरिकन लेखक प्राइस कोलियर का यह कथन आज भी कितना जीवन्त तथा सटीक है। अब हिंदुस्तान पश्चिम के आर्थिक मंदिर में फंसा है। मनुष्य की जायदाद कितनी है और उसने कितना दब्बा पेड़ा किया है, इस पर उसका सामाजिक पद निर्धारित किया जाता है, इस स्थिति के कारण वर्तमान असंतोष में ओर वृद्धि हो गई है।"
बाल, ने अपने "इकोनॉमी ज्योलाजी ऑफ इंडिया में लिखा है कि - "अगर भारत को पूरे विश्व से अलग कर दिया जाय और उसके खानिज उत्पादनों को प्रतियोगिता से भरक्षित कर दिया जाय तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसके पास अभी इतनी क्षमता है कि यह अपने निजी परिसर में अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।"

dेश के लिए शिक्षा की योजना बनाते समय महामान देश की उक्त आर्थिक दशा को गम्भीरता से ले रहे थे। उनके अनुसार देश की दरिद्रता का एक मुख्य कारण देशी उद्योग-धन्यों का नष्ट किया जाना तो था ही, महंगी शासन व्यवस्था, नीकटी पेशे के उच्च पदों पर भारतीयों की अपेक्षा यूरोपीय एवं यूरोपियन लोगों की अधिक बहाली एवं पक्षपात पूर्ण रैखिक, सेना पर बेतहासा एवं मनमाना स्वयं, व्यापार्थियता, किसानों पर आपत्तिजनक कमरोड लगान, देश में औद्योगिक विकास को बढ़ावा न दिया जाना, कर
तथा मुद्रानीति, कृषि तथा ओढ़ोगिक शिक्षा का अभाव आदि अनेक कारण थे, जो देश में भारी दरिद्रता तथा असंतोष का कारण बने। इस दरिद्रता से मुक्ति के लिए मालवीय जी देश में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा के व्यापक प्रसार-प्रचार, साथ ही पुराने घरेलू उद्योग-धन्यों को पुनर्जीवित करना अनविवर्त्त समझते थे। महामन्त्र अपने शिक्षा योजनाओं में इस तरह की शिक्षा को उन्होंने प्रमुख स्थान दिया।

शिक्षा के नये स्वरूप की स्थापना की आवश्यकता का दूसरा महत्वपूर्ण प्रेरक प्रसंग था हिंदुओं की दयनीय सामाजिक एवं आध्यात्मिक दशा। मालवीय जी का मानना था कि "देश और जाति का उद्दर करने के लिए, इसके सुख-सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा पाने के लिए, सब प्रकार की उन्नति धर्म सम्बन्धी, समाज-सामाजिक, व्यापार-सम्बन्धी तथा राजनैतिक उन्नति जरूरी है। यह एक दूसरे के सहायक तथा अंग है।" उन्होंने देश के पतन का एक मुख्य कारण पर्स्पर विश्वास, सहयोग एवं सदभावना पर गढ़त हिंदू समाज का धर्म के अभाव में विश्रामित एवं विघटित हो जाना बताया है।

चिंतकों एवं दार्शनिकों के इस देश का ऐसी दशा में पहुँच जाना वास्तव में चिंता की बात है।

भारत की उन्नति का अधार धर्म रहा है। सांस्कृतिक जीवन व्यतीत करते हुए परामर्श की ओर प्रेरित करने वाला हिंदू धर्म भौतिक और बौद्धिक व्यवहार को आत्मा के विकास की दृष्टि से निर्धारित करता है। जो सांस्कृति धर्म और नीति का अनुसरण कर शरीर मन और आत्मा के विकास में सहायक होती है; वही वातावरिक तथा उत्तम संस्कृति है। भारत में जब कभी इस संस्कृति की विजय हुई, तब-तब वहाँ समृद्धि और आनंद का वातावरण रहा। अपने-अपने कामों का पालन करते हुए पारलौकिक सत्ता के प्रति समर्पित भाव से जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त इस संस्कृति को
अभिमान रहा है। आवश्यकताओं को बढ़ाना किसी भी सुसंस्कृति समाज का लक्षण नहीं होता, क्योंकि यही तो सारे दुःखों की जड़ है। अपनी आवश्यकताओं को सुसंस्कृत करना सच्ची संस्कृति का लक्षण है। अपनी इसी विशेषता के कारण भारत कभी स्वाधीनतम तथा समुद्रतात्त्विक बना था।

हिंदू समाज के महान संस्थापकों ने अर्थ को मानव–जीवन की एक वैध आवश्यकता बतायी है। यहाँ सिर्फ धर्मशास्त्र का प्रणयन नहीं हुआ, उसके साथ–साथ अध्यात्म शास्त्र एवं अर्थशास्त्र की भी रचना हुई। इसमें से किसी भी एक पक्ष को उपेक्षित कर देने पर हमारी जीवन व्यवस्था तथा प्राकृतिक प्रगति असंतुलित हो जाती थी। विकास रूढ़ि जायेगा। हिंदू समाज का पूरा ताना बना धर्म पर निर्मित है। इस समयता के लिए विद्यालय अर्थशास्त्र विधान संस्कृत वाङ्मय है, जो प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक, वैज्ञानिक, नैतिक और अध्यात्मिक विकास और उसके समृद्धशाली समुदाय के निर्माण की पूर्ण योजना प्रस्तुत करता है। जीवन और स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद का विकास किया गया, जो हिंदू शास्त्रों का एक प्रधान अंग है, इसे उप–वेद की संज्ञा दी गयी है। इस क्षेत्र में इस देश ने चरक और सुभुदुत जैसे आयुर्वेद प्रवर्तकों को जन्म दिया।

इस देश ने महत्त्वक के अनुशासन पर गम्मीट चित्तव किया है। महत्त्वक ही तो मानव–समुदाय के सामग्री प्रणयन का मूल केंद्र है। भाषा, जो मानसिक और सांस्कृतिक विकास का प्रयास और महत्वपूर्ण माध्यम है, पर भी इस देश ने गम्मीटता से चित्तव किया और ऐसी भाषा का अविकार किया जो मनुष्य के अनुभूत चित्तव की अभिव्यक्ति देने में पूर्ण संकल्प है, वह है संस्कृत। मालवीय जी के अनुसार "यह भाषा लिपि, अभिव्यक्ति, स्मृति तथा चित्तव की दृष्टि से विश्व में अद्वितीय है। इस भाषा में अविवाह
एवं उच्चारण से मानसिक शान्ति मिलती है, जो मस्तिष्क को अनुशासित रखने के लिए जबरदस्त माध्यम है।”

व्याकरण शास्त्र और भाषा शास्त्र के क्षेत्र में भी इसी देश ने सर्वप्रथम वेज्ञानिक विचार किया। इस क्षेत्र के पाणिनी और भंवल के नाम में जाना जाता है। विचारविश्वासकर्म के साथ-साथ महान् व्याकरण शास्त्रियों पर इस देश का गर्व है। फिर वास्तविक ज्ञान के आविष्कारक तथा महान् दार्शनिक गौतम और कर्माधार को हम वैसे भूल नहीं करते हैं। विचार और अंतः प्रज्ञा शाक्ति के विचारक पंजाब के ‘योगसूत्र’ आज भी विश्व के प्राचीन अथवा आधुनिक देशों की पकड़ से बाहर की बात है। यह सत्य है कि हिन्दू दर्शन के समपूर्ण स्वीकृत पद्धति का उद्देश्य आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि तथा आत्म-विमुक्ति है; किन्तु इसकी पद्धति भौतिक ज्ञान के विकास के लिए कम सुविधाक नहीं। यह भी सत्य है कि यह समपूर्ण ज्ञान सर्व प्रथम ‘सत्य’ का अन्वेषण करता है। भारत का समपूर्ण सामाजिक ठोंचा तथा जीवन विकास का हर पहलू सत्य पर अवलंबित है। “सत्य” हिन्दू धर्म का केंद्रीय दर्शन है और धर्म ही सर्वश्रेष्ठ सत्य है “सत्यानाध्यात्म परोपरण।” समपूर्ण संस्कृत वागदमय इसी “सत्य” की वकालत करता है, जो मानव जीवन का परम धर्म है। “सत्य” और “अहिंसा” सम्य एवं सुसंस्कृत भारत के दो महान् आदर्श रहें हैं। वहाँ के प्राचीन शिक्षा संस्थाओं में जब कोई छात्र प्रथम प्रवेश के लिए जाता, तो उसे सर्वप्रथम-“सत्य वद धर्मचर” का उपदेश दिया जाता था। हिन्दू शास्त्रों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में “सत्य” आहिनसा के अतिरिक्त “निवार्थ सेवा” “लोकसंग्रह” आदि है। यहाँ आचरण-“आर्जव (साधुता) को सारी तपस्या से श्रेष्ठ बटाया गया-“शून्य बलने संक्षेपितमायति यातिव।” क्षमा, धृति, दम, शम, अनुक्रम, पदरकार आदि सदुपादों जो कि मानव समाज के बीच शान्ति के प्रेक्षक तत्त्व है; कि कामना की गयी है। समपूर्ण
संस्कृत काव्य मानव की सृष्टि के प्रत्येक जीव तथा कण-कण से अनुराग में बीच देने की क्षमता रखते हैं।

व्यक्ति और समाज के बीच सामाजिक स्थापित करना, इस युग की सबसे ज्यादा समस्ता है। व्यक्तिवाद का मूल कारण "अर्थ" है। इस समस्ता का समाधान एक मात्र सामाजिक व्यवस्थापन है। इस समस्ता के समाधान के लिए प्राचीन भारत ने वर्णविधि धर्म, समाज-व्यवस्था तथा लोक संग्रह पर बल दिया। यहाँ का सामाजिक संगठन मनुष्य की रूढि, प्रवृत्ति तथा गुण और मानव समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार निर्मित हुआ था, जिसका मूलाधार "कर्म" था। किसी भी कार्य को अथवा उसको करने वाले को छोटा या हेव नहीं समझा जाता था, क्योंकि सृष्टि या प्रकृति को देखने का नजरिया ही यहाँ महान् तथा अदभुत रहा है। ईश्वर को अपने भीतर तथा बाहर सर्वत्र देखना और सबको ईश्वर में देखना, एक ऐसी दृष्टि थी, जो सृष्टि के एक अदना प्राणी को भी महान् बना देने वाली थी। "ईश्वर" पर विश्वास करने वाला हिंदू समाज कभी आक्रांत या आत्तात्विक नहीं हो सकता। समय के उलट-फेट, बाह्य संस्कृतियों एवं सम्यताओं के साथ संक्रमण, अनेक आक्रमणों एवं स्वयं कर्म से विमुख होकर विलासिता की ओर उम्मुख हो जाना, ये सब कुछ ऐसी ऐतिहासिक बातें है, जो हमारे समाज की मौलिकता तथा स्वाभाविकता को प्रभावित किये बिना नहीं रख सकता।

फलस्वरूप, अलगावादी एवं अस्थिरतावादी प्रवृत्तियों का उदय हुआ, घोर सामाजिक वैश्विक ढारा हमारा परस्पर विकास एवं सहयोग पर निर्भर समाज विशृंखलित एवं विघटित हो चला, कर्म की जगह जातिवाद का अन्यायकारी रूप सामने आया, देश को गुलाम बनाने वाली जातियों ने इस विभेद का लाभ उठाकर हमारी शक्ति को और कमजोर तथा पतनीभूमिक बना दिया।
हिंदू समाज के संस्थापकों के चित्तन का प्रधान उद्देश्य एक शक्तिशाली ज्ञानसंपन्न, समुद्रशाली तथा शुद्धविशिष्ट मानव-समुदाय की संस्थाना करना रहा है, और इसके साहित्य का एक खास उद्देश्य इस समुदाय को नैतिक तथा भौतिक दृष्टि से समुझत बनाना रहा है। भारत के इतिहास में एक ऐसा भी समय रहा है, जबकि इसने न सिर्फ धर्म व दर्शन के क्षेत्र में, बल्कि विज्ञान, कला, उद्योग तथा सम्भवता निर्माण के अन्य आवश्यक क्षेत्रों में भी महान् उपलब्धियों अर्जित की है। यूरोपीय अनुसंधान तथा विज्ञान इस बात को स्वीकार करने के लिए बाध्य है कि गणित, अलजबर, ज्योतिःसैनिक, खगोल-विज्ञान और चिकित्सा का जन्म-स्थान भारत रहा है। किंतु गत आठ-नौ सी वर्षों से भारतीय सम्पत्ति की विकास की प्रक्रिया में सिर्फ़ अवस्थ हुई है, बल्कि यह क्रमशः अपनति की ओर अपनत हुई है। मात्रकाराध्य के बाद गणित के क्षेत्र में भारत ने कोई विकास नहीं किया। चिकित्सा क्षेत्र में भी बाणमंडल के काल के बाद कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। ज्ञान की अनेक शाखाएँ जो कि यहां कभी बड़े मनोक्षेत्रों से विकसित की गयी और फली-फूली थी, अब लुप्त प्राय हो गयी है या होती जा रही है। वेद-ज्ञान जो हदय स्वतंत्र था, विकल्प श्रीणी हो चुका है। आज वेदाध्ययन जितने उत्साह से साथ यूरोप में हो रहा है, उतना भारत में नही। हिंदू-गणितज्ञ, चिकित्सकों, संगीतज्ञों, तार्किकों आदि की पीढ़ी क्रमशः लुप्त हो गयी है।

उपर्युक्त सारी परिस्थितियों पर गौर करते हुए, युगचित्तक पं. मदन मोहन मालवीय जी इस निषेध पर पहुँचे कि हमारी सारी समस्ताओं की जड़ "अज्ञानता" ही है। किसी भी सभ्य एवं समुन्नत समाज की बुनियाद उसकी शिक्षा है। विश्वविद्यालय या उच्च शिक्षा जो देश के लिए कार्यशील, दक्ष एवं उपयोगी नागरिक तैयार करती है। जिनके कुशलता व बौद्धिकता के बल पर देश विकास पथ पर दृष्ट गति
से अग्रसर हो सकता है। इसके अभाव में विवेक–हीनता तथा विनाश की हिरासति उत्पन्न होगी। वैश्विक शिक्षा की प्रस्ताविति में भारत की हिरासति बिलकुल नगण्य थी। उस समय संयुक्त राष्ट्र में 18, फ्रांस में 15 इटली में 21, जर्मनी में 22, अमेरिका में 134 विश्वविद्यालय थे। किन्तु भारत जैसे विशाल देश में तब तक मात्र 5 विश्वविद्यालय थे। भारत में शिक्षा पर अधिक ध्यान न दिया जाना अंग्रेजों की कुटिल नीति का एक अनिवार्य अंग था। मालवीय जी का मानना था कि विना शिक्षा तथा धर्म के प्रचार–प्रसार के देश की न तो भौतिक उन्नति हो सकती है और न नैतिक।

महामना जी के विश्वविद्यालयी शिक्षा के उद्देश्य:–

महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी की सनातन धर्म में अद्वैत आस्था थी। सनातन धर्म को संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हुए मानव जीवन के चार प्रमुख पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को उपयोगी माना है। मालवीय जी शिक्षा द्वारा इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल देते थे। मालवीय जी ने स्पष्ट किया कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पहली आवश्यकता स्वस्थ्य शारीरिक है। अतः शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य मनुष्य का शारीरिक विकास होना चाहिए। मनुष्य की दूसरी आवश्यकता ज्ञान, बुद्धि एवं विवेक की है। अतः शिक्षा द्वारा इनका भी विकास होना चाहिए। मालवीय जी सच्चे समाज सेवक और अपनी संस्कृति के सच्चे अनुयायी थे। शिक्षा द्वारा संस्कृति की रक्षा पर बल देने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त चरित्र निर्माण, राष्ट्रीयता की शिक्षा, रोजगार की शिक्षा तथा आत्मविश्वास उन्नति को मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना।

इस प्रकार महामना के विश्वविद्यालयी शिक्षा के उद्देश्यों में– शारीरिक विकास, बुद्धि एवं मानसिक विकास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास, नैतिक व
चार्टिरिक विकास, व्यवसायिक व आर्थिक विकास, राष्ट्रीयता का विकास, राजनैतिक जागरूकता तथा अध्यात्मिक उन्नति आदि शामिल था। इसके अतिरिक्त महामन्त्री ने उच्च शिक्षा के लिए निर्माणक्रिया उद्देश्यों को उचित माना है–

1. प्रतिमाशाली युवकों की खोज करना और उचित रूपियों, अभिवृद्धियों, नैतिक एवं बौद्धिक मूल्यों में उन्नति तथा मानसिक शक्ति का विकास करना।

2. शारीरिक स्वास्थ्य की उन्नति तथा क्षमता का पूर्ण विकास करने में सहायता करना।

3. जीवन के सभी क्षेत्रों में उचित प्रकार का नेतृत्व प्रदान करना।

4. आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, धर्म, साहित्य तथा वैज्ञानिक की शिक्षा के साथ-साथ कृषि, कला, विज्ञान, तकनीकी तथा अन्य व्यवसायों में स्त्री तथा पुरुष को समान प्रशिक्षित करना।

5. प्राचीन ज्ञान और विश्वासों का नवीन आवश्यकताओं और खोजों के प्रकाश में व्याख्या करना।

6. उत्साह एवं निर्भयता से सत्य की खोज के लिए युवकों को प्रोत्साहित करना।

7. विश्वविद्यालय को ऐसे नवयुवकों को तैयार करना चाहिए जो राजनैतिक, प्रशासनिक तथा व्यवसायिक क्षेत्र में नेतृत्व प्रदान कर सकें।

8. ऐसे साहसी, दूरदर्शी तथा बुद्धिमान व्यक्तित्व का निर्माण करना जो समाज-सुधार कर वारंटित सामाजिक परिवर्तन ला सकें।

9. देश की रक्षा के लिए ऐसे नागरिकों को तैयार करना जो विवेक पूर्ण हो तथा ज्ञान प्रसार, ज्ञान की सत्तू खोज, जीविकापार्जन की क्षमता तथा भौतिक न्यूनताओं की पूर्ति के लिए समयक योग्य बन सकें।
10. विश्वविद्यालय सम्यक के अभिन्न अंग है। अतः उन्हें सम्यक के बौद्धिक अप्रूत तैयार करना, जीवन तथा ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित करना और विषयी अनुमान का समन्वयवायक ज्ञान प्रदान करना।

11. विश्वविद्यालयी शिक्षा द्वारा स्नातकों में सहानुभूति, दया, रिस्ट्रीयों के प्रति आदर की भावना, शान्ति तथा प्रेम आदि गुणों का विकास करना और विश्व-कल्याण तथा विश्व-शान्ति के लिए अन्तरराष्ट्रीय सद्भावना का विकास करना।

**विश्वविद्यालयी शिक्षा का पाद्यक्रम:**

मालवीय जी ने शिक्षा की पाद्यचर्या की कोई क्रमबद्ध रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की, परन्तु उसके निर्माण के सम्बन्ध में सुझाव अवश्य दिये है, जिसमें शिक्षा का धर्म संस्कृति पर आधारित होना अनिवार्य माना है। धर्म और संस्कृति का सही ज्ञान साहित्य से होता है। इसलिए साहित्य की शिक्षा पाद्यक्रम में शामिल की जानी चाहिए। हिंदी के बहुत बड़े पक्षधर्म होने के कारण अनिवार्य रूप से हिंदी पढ़ाना तथा उसे राष्ट्रीय भाषा घोषित किये जाने पर बल दिया। परन्तु उच्च ज्ञान व विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा के लिए अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर बल दिया। महामना ने अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं को इस उद्देश्य से पढ़ाने पर बल दिया कि जिससे भारतीय साहित्य विज्ञान तथा भाषा में उनसे भली प्रकार सहायता मिल सकें। व्यवसाय व आर्थिक विकास के लिए कला-कौशल, विज्ञान व तकनीकी तथा व्यवसायिक शिक्षा को स्थान दिया। ललित कला तथा सांस्कृतिक क्रियाओं को भी पाद्यचर्या का अनिवार्य अंग माना। महामना ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में वैदिक विभाग, आयुर्वेद विभाग, विज्ञान व कौशल विभाग, कृषि विभाग की स्थापना कराकर—वेद, वेदांग, स्मृति, दर्शन, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद, गणित, शिल्प, इंजीनियरिंग, तकनीकी शिक्षा तथा कृषि
विषयों के अध्ययन पर बल दिया। इस प्रकार महामना ने विश्वविद्यालयी स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण के समन्वय में प्रमुख विचारणीय तथ्य प्रस्तुत किए हैं:

1. चयनित विषय वस्तु में अधिक लचीलापन और छात्रों को उनके चयन में अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए।

2. डिग्री कोर्स के लिए विषयों के अनुमति योग्य समुच्चय कला एवं विज्ञान दोनों में ही वर्तमान की तुलना में अधिक लोकार्थ होने चाहिए। ये विद्यालयों में पठित विषयों से अधिक कठोरता से समाप्तित नहीं होने चाहिए।

3. विश्वविद्यालयों जो अच्छी तुरिताएँ रखते हैं, को विशिष्ट पाठ्यक्रमों और सामान्य, ऑनर्स पाठ्यक्रमों को प्रदान करना चाहिए।

4. विश्वविद्यालयों में अन्तर-विषयी अध्ययनों को उन्नत बनाने के विशिष्ट प्रयास किये जाने चाहिए।

5. विभिन्न विषयों में सामान्य तथा विशिष्ट शिक्षा के समन्वय में भली-भांति विचार कर लिया जाय और उनको एक-दूसरे से समन्वित करके इस प्रकार से शिक्षा की व्यवस्था की जाय, जिससे कि छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो सके।

6. एमोए तथा एमोएस-सी0उपाधियों के लिए शिक्षण नियमित व्यवस्था और सेमीनार तथा प्रयोगशाला कार्य द्वारा भलीभांति व्यवस्थित किया जाय।

7. उपाधि पाठ्यक्रम में किसी एक विषय का उच्च अध्ययन तथा अनुसंधान विषयों का प्रशिक्षण सम्बन्धित होना चाहिए।

8. विश्वविद्यालय में कुछ अनुसंधान अभिवृद्धियों की व्यवस्था तथा शोध छात्रों को फेलोशिप आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।
विश्वविद्यालय का मुख्य ध्यान विश्वदृढ़ता तथा आधारभूत अनुसंधान की ओर होना चाहिए तथा अध्यापकों को उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए।

विश्वविद्यालयी शिक्षा की शिक्षण विधियाँ:-

मालवीय जी पपरावादी व्यक्ति थे इसलिए प्राचीन भारतीय शिक्षण विधियों को उत्तम मानते हैं। श्रवण, मनन और निदिघ्यासन को तो वे अध्यान-अध्यापन की सर्वात्मक विधि मानते थे। पर इस संदर्भ में वे आधुनिक विचारों से भी अनमित नहीं थे। वे स्वयं अध्यापक रहे थे और प्राचीन एवं अर्थविना दोनों शिक्षण विधियों को कुछ अपने ही तरीकों से प्रयोग करते थे।

1. निरीक्षण विधि :-

मालवीय जी इस तथ्य से पता करते थे कि बच्चे देख-सुनकर अधिक सरलता एवं स्पष्टता के साथ सीखते हैं। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि जहाँ तक यह सम्भव हो बच्चों को इसी प्रकार सीखाना चाहिए। वर्तमान युग में यह विधि निरीक्षण विधि के नाम से प्रचलित है।

2. क्रिया एवं अभ्यास विधि :-

कला-कौशलों, उद्योग और विज्ञान के शिक्षण के लिए इन्होंने स्वयं करके देखने और स्वयं अभ्यास करके सीखने पर बल दिया। कला-कौशलों की शिक्षा के संदर्भ में इसे आज कार्यशाला विधि कहते है। विज्ञान की शिक्षा की संदर्भ में प्रयोगशाला विधि कहा जाता है।

3. व्याख्यान विधि :-

महामाना ने प्राचीन शिक्षण विधि के प्रवचन, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ विधियों के विशेष रूप से नवीन शिक्षण पद्धति में प्रयोग करने पर बल
दिया। इस बात पर बल देते हुए महामाना ने कहा है कि उक्त विचित्रों का प्रयोग करते समय उदाहरण व दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाना है। वर्तमान समय में इस विधि को व्याख्यान विधि के नाम से जाना जाता है।

4. स्वाध्याय विधि:-

मालवीय जी के अनुसार उच्च स्तर पर स्वाध्याय का विशेष महत्व है। इन्होंने स्पष्ट किया है कि इस स्तर पर आते-आते छात्र स्वयं पढ़कर स्वयं समझने योग्य हो जाते हैं। अतः इस स्तर पर छात्रों को स्वाध्याय के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। स्वाध्याय के सम्बन्ध में महामाना का विचार था कि पढ़ने समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तक में लेखक की विचारधारा में ढूँढ जाओ। यही तुम्हारी सामाजिक है; यही तुम्हारी उपासना है; और यही तुम्हारी पूजा है। किसी विषय पर लेखकों, समालोचकों को पढने के बाद स्वयं चिन्तन मनन कर सही तथ्यों को प्राप्त करें। महामाना पुस्तक पढने के बाद चिन्तन मनन आवश्यक मानते थे।

छात्र अनुशासन:-

मालवीय जी शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन को आवश्यक मानते थे। परन्तु अनुशासन से तात्पर्य आत्मानुशासन से लेते थे। दण्ड के भय से स्थापित व्यवस्था को यह अनुशासन नहीं मानते थे। वे इस बात पर बल देते थे कि शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को अपने ऊपर स्वयं निर्णय रखना चाहिए और मन, बचन व कर्म से शुद्ध होना चाहिए। इनका स्पष्ट मत था कि छात्र तो तभी अनुशासन में रहेंगे जब शिक्षक अनुशासन में रहेंगे। अतः आवश्यक है कि शिक्षकों का आचरण अपने में आदर्श एवं अनुकूलनीय होना चाहिए। इस प्रकार स्थापित अनुशासन को प्रभावात्मक अनुशासन कहा जाता है। इस प्रकार से अनुशासन स्थापित करने में दण्ड का कोई स्थान नहीं
होता। मालवीय जी स्वयं इतने वर्ष शिक्षक रहे, कुलपति रहे और टेक्टर रहे। परन्तु कभी भी किसी को अनवश्यक रूप से होकर दण्डित नहीं किये। सच्चे अनुशासन की प्राप्ति के लिए वे नित्य पूजा-पाठ और वंदना करने; नियमित रूप से उपवास करने और नियमित जीवन-जीना आवश्यक समझते थे। इनका विश्वास था कि नित्य पूजा-पाठ और संध्या करने वाला व्यक्ति स्वभावतः अनुशासित हो जाता है और कभी किसी से जाने अनजाने कोई अनुशासनहीनता हो तो जाती थी, अपराध हो जाता था तो महामन उसे दण्ड नहीं देते थे, केवल प्रायरिशित कराते थे।

शिक्षक और शिक्षार्थी:-

महामन ने अपना जीवन शिक्षक के रूप में प्रारंभ किया था। वे प्राचीन परम्परा के अनुसार थे और शिक्षकों को समाज में सर्वोच्च स्थापन देते थे। इनके अनुसार शिक्षक को धर्म परम्परा, विद्वान और सत्यानुपेक्षी होना चाहिए और शिक्षार्थियों के प्रति समर्पित होना चाहिए। इसके साथ-साथ प्रत्येक शिक्षक का आचरण आदर्श व अनुकूलक रूप से चाहिए। शिक्षकों से यह अपेक्षा रखते थे कि वे समाज सेवक और राष्ट्रमंत्र हो। इनका विश्वास था कि ऐसे शिक्षकों से ही शिक्षार्थी सच्चे ज्ञान और आचरण की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षार्थियों से भी भ्रमचर्य पालन की अपेक्षा करते थे। वे अपने शिष्यों को प्रातःकाल उठने, नित्य संघात्वकन करने, बड़े का आदर करने, शिक्षकों में श्रद्धा रखने और उनकी आज्ञा का पालन करने तथा प्राणी मात्र सेवा करने का उपदेश देते थे। इनके अनुसार विद्वानें को अपने मन, बच्चे और कर्म पर संयम रखना चाहिए। विनम्र होना चाहिए, सादा जीवन जीना चाहिए और विद्या से ब्रेम करना चाहिए। वे भारतीय प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा को पुनः स्थापित करना चाहते थे।
विश्वविद्यालयी वातावरण :-

मालवीय जी प्राचीन गुरुकुल परम्परा के पश्चिम थे। ये चाहते थे कि विश्वविद्यालयों की स्थापना ऐसे सुन्दर और स्वच्छ वातावरण में की जाए जो विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास में सहायक हो। आपने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना ऐसे ही स्थान पर की थी। शिक्षण संस्थानों को ज्ञान की दुकान न होकर बच्चों में उच्च संस्कारों का निर्माण करना चाहिए। विद्यार्थियों में विद्यालय के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए, पहली बात हो इन्होंने कही थी कि विद्यालयों में प्रवेश के समय बच्चों का विद्यार्थी संस्कार कराया जाय, विद्यालयी वातावरण धर्म प्रधान हो, शिक्षक व शिक्षार्थी साथ पूजा-पाठ करे, संध्या करे, कथा सुने, उपदेश सुने और विधा तप करे।

शिक्षा का माध्यम :-

मालवीय जी का नारा था- हिन्दी-हिन्दू, हिन्दुस्तान। हिन्दी में भी ये संस्कृत गार्मित शुद्ध हिन्दी के पश्चिम थे। इनका तर्क था कि हिन्दी भारत के बहुसंख्यक वर्ग की भाषा है जितने राष्ट्र भाषा बनना चाहिए और इसे ही शिक्षा का माध्यम बनना चाहिए। परन्तु उस समय तक उच्च शिक्षा के पादयक्रमों की पुस्तकों हिन्दी में उपलब्ध नहीं थी, फिर हिन्दी भाषा में विज्ञान एवं तकनीकी शब्दावलि भी नहीं थी अतः इस स्तर के लिए मालवीय जी ने अंग्रेजी को माध्यम बनाना स्वीकार किया। पर साथ ही यह भी व्यवस्था दी कि जिन विषयों की शिक्षा हिन्दी के माध्यम से दी जा सके उसके लिए बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में प्रयत्न किया जाए।

जन शिक्षा :-

महामन्त्र प्राचीन वर्ग व्यवस्था- (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) को मानते थे परन्तु इन्होंने शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से बंचित नहीं किया। इन्होंने
घोषणा की कि “शिक्षा सभी मनुष्यों का जन्म सिद्ध अधिकार है।” इन्होंने प्राचीन वर्णनृसार कर्म की शिक्षा के सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं किया। इन्होंने घोषणा की कि सामान शिक्षा का अधिकार सभी मनुष्यों का है, हां विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था बच्चों की योग्यता नुसार की जानी चाहिए। इनके इस विचार से जन शिक्षा के विचार को बड़ा बल मिला।

स्त्री शिक्षा :-

मालवीय जी स्त्रियों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे और शिक्षा की दृष्टि से स्त्री-पुरुष में मेद नहीं करते थे। इनके विचार से लड़के-लड़कियों की शिक्षा में किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार का भेद भाव नहीं होना चाहिए, दोनों को शिक्षा के समान अवसर देने चाहिए। इनके विचार से देश में स्त्री शिक्षा को बड़ा बल मिला, ये उच्च शिक्षा की ओर भी आकर्षित हुई थी। सहायिका के समबंध में भी इनके विचार समयानुकूल थे। ये माध्यमिक स्तर पर सहायिका की स्वीकृति नहीं देते थे और इससे पहले माध्यमिक स्तर तक और इसके बाद उच्च स्तर पर सहायिका की स्वीकृति देते थे। समानता: ये किशोर मनोविज्ञान से परिचित थे।

व्यवसायिक शिक्षा :-

मालवीय जी देश की निर्धारित और बेरोजगारी के प्रति चिंतित थे। इनकी दृष्टि से इन्हें दूर करने का एक मात्र उपाय है और वह है व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था। इन्होंने जीवन की आधारभूत मांगों की पूर्ति और जन साधारण की बेरोजगारी दूर करने के लिए कृषि और कुटट उद्योग घनों की शिक्षा की व्यवस्था करने पर बल दिया और देश के आर्थिक विकास के लिए मारी उद्योगों की शिक्षा (इंजीनियरिंग और तकनीकी) की व्यवस्था पर बल दिया। इन्होंने मध्यम वर्गिय व्यवसायों-क्रान्ति-विक्रान्ति, वकालत, डॉक्टरी एवं अध्यापन आदि की शिक्षा को भी अवश्यक बताया और देश में
इनकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करने पर बल दिया। इन्होंने स्वयं बनाए हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारंभ से ही कृषि, विज्ञान, गणित इंजीनियरिंग और तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की थी।

धार्मिक व नैतिक शिक्षा:-

मालवीय जी धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। धर्मों में भी ये सनातन धर्म (वैदिक धर्म) को श्रेष्ठ मानते थे। इन्होंने स्पष्ट किया कि सनातन धर्म हमें लोकिक एवं पारालोकिक दोनों जीवनों की उल्टी शिक्षा देता है, इससे बताए गये मार्ग पर चलकर हम अपनी लोकिक एवं पारा-लोकिक दोनों प्रकार की उन्नति कर सकते हैं। इन्होंने प्रारंभ से ही धर्म को शिक्षा अनिवार्य रूप से देने पर बल दिया। परन्तु ये धर्म के केवल सैद्धांतिक पक्ष पर ही विश्वास नहीं करते थे, ये उसे जीवन में उतारते के पक्ष में थे। इनका विश्वास था कि नित्य ईश्वर स्मरण और संघ्या वंदन से शरीर, मन और बुद्धि सभी निर्मल होते हैं। ये शिक्षक और शिक्षार्थी, सभी से यह अपेक्षा करते थे कि वे नित्य पूजा-पाठ करें, संघ्या-वंदना करें, सत्संग करें कथा और उपदेश सुनें। ये अपने शिष्यों से एवादशी प्रति को नियमित और संवृत्त रूप से करने को कहते थे। इनका विश्वास था कि इससे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सभी की उन्नति होती है और यह बात अपने में सभी भी थी।"
अन्वेषण सूची

(1) तिवारी उमेश दत्त :- "भारतीय गौरव का कीर्तिस्मृति", काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्रकाशन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी पृ00स0- 119-121।

(2) डॉ पाण्डेय राजबली :- "सम्मेलन पत्रिका" काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी पृ00स0- 51-52।

(3) डॉ राय कृष्णदास :- "प्रजा" काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी पृ00स0- 112-113।

(4) हिस्ट्री ऑफ द बी0एच0यू0 :- प्रकाशन विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी पृ00स0- 741-742।

(5) पं शर्मा श्रीराम आचार्य :- "धर्म प्राण-महामन, पं मदन मोहन मालवीय जी" प्रकाशक युग निर्माण योजना, गायत्री तपोमूंसी, मथुरा-3 पृ00स0- 2-4।

(6) लाल रमन विहारी :- "शिक्षा के दर्शानिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त" रस्तोगी पवित्रकेशन्स, गंगोत्री शिवाजी रोड, मेठ, पृ00स0- 286-287।

(7) पाठक एवं त्यागी :- "शिक्षा के सिद्धान्त" प्रकाशक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ00स0- 291।

(8) लाल रमन विहारी :- "शिक्षा के दर्शानिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त" रस्तोगी पवित्रकेशन्स, गंगोत्री शिवाजी रोड, मेठ, पृ00स0- 288-289।

(9) पं शर्मा श्रीराम आचार्य :- "धर्म प्राण-महामन, पं मदन मोहन मालवीय जी" प्रकाशक युग निर्माण योजना, गायत्री तपोमूंसी, मथुरा-3 पृ00स0- 4-5।

(10) लाल रमन विहारी :- "शिक्षा के दर्शानिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त" रस्तोगी पवित्रकेशन्स, गंगोत्री शिवाजी रोड, मेठ, पृ00स0- 290-292।